SERBD- अंतरराष्ट्रीय हिंदी शोध पत्रिका नव अन्वेषण
ISSN (Online): XXXX-1234
Volume 02 Issue 03, July - Sept, 2022

मेवाड़ के जागीरदार एवं इनकी जागीरो में प्रचलित लाग–बाग/विभिन्न कर – एक विवरण

(व्याख्यान)

लेखक
डॉ रश्मि राज वर्मा
अ.वि.इतिहास
शास. महाविद्यालय झारड़ा उज्जैन, म.प्र.प
***Email:* -**

सारांश(Abstract):– प्रस्तुत आलेख मेवाड़ महाराणा के क्षेत्रान्तर्गत सामंती व्यवस्था की महत्वपूर्ण जानकारी के साथ-साथ उनकी आय का प्रमुख स्रोत कर एवं संबंधित विभिन्न रूपों का संपूर्ण रोचक वर्णन प्रस्तुत करता है। है।

keywords : मेवाड़, जागीरदार, सामंत, लागबाग, श्रेणी, बराड़, भोग, नजराना

प्रचलित भाषा में 'मेवाड़' संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में 'मेदपाट'[1] नाम से जाना जाने वाला उदयपुर राज्य[2] है। मेवाड़ राज्य का मूल शासक एक लिंगनाथ को स्वीकारा गया है, फिर इनका 'दीवान' मेवाड़ का मानवीय शासक जो पूर्व में रावल/महारावल व राणा, हम्मीर के शासनकाल तक और हम्मीर के चित्तौड़ पर आधिपत्य कर लेने के बाद से महाराणा कहलाये गये इसलिए महाराणा द्वारा जारी किये जाने वाले आदेशों पर 'श्री दीवान जी आदेशात्' शब्दावली का प्रयोग किया जाता था। तत्पश्चात् मेवाड़ में सामंतों का स्थान था।
मेवाड़ की उत्तम, सुदृढ़ एवं दीर्घकालीन प्रशासनिक व्यवस्था की नींव मेवाड़ की जागीरदारी व्यवस्था थी जिसमें जागीरदारों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। मेवाड़ के जागीरदारों की प्रतिष्ठा राजपूताने में कहीं और के जागीरदारों से अधिक थी। इन्हानें देशभक्ति, स्वामी भक्ति से ओतप्रोत हो विकट परिस्थितियों में महाराणा का सहयोग किया एवं मेवाड़ की रक्षार्थ अपने प्राणोत्सर्ग भी किये। यही कारण है कि मेवाड़ की पट्टा बहियों, ठाकुरारें रेख री बही आदि में 'झाला रो साथ, चुहौंण रों साथ, राठौड़ा रो साथ, सिसोदिया रो साथ' आदि लिखा प्राप्त होता है।[3]

मेवाड़ में स्थानीय प्रशासन प्रायः सामंतों द्वारा ही संचालित होता था जो कि अपनी जागीरों के शासन प्रबंध में स्वतंत्र थे तथापि राज्य में शासन प्रबंध राणाओं का ही होने से जागीरों के निवासी जनों पर दोहरा शासन रहता था। सामंतों को सदैव मेवाड़ की राज्य परम्परा व व्यवस्था का अनुसरण करना पड़ता था। जागीर से सामंत नियत, फौज, घोड़े आदि रखते व अपने क्षेत्र में सुरक्षा एवं शांति बनाये रखते थे। जागीर प्राप्त करना मेवाड़ में बड़े सम्मान का सूचक समझा जाता था नियमानुसार जागीरें मेवाड़ राज्य के रक्त संबंधियों को, अन्य राजकुल के क्षत्रिय सामंतों को, महाराणा के निकट संबंधियों को, धर्मार्थ कार्यों हेतु चारणों/ब्राह्मणों को, वेतन के बदले दरबारी कर्मचारियों को प्रदान की जाती थी एवं मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्र (भोमट) की जागीर भोम व इसका उपभोक्ता भौमिक जिनकी भूमि स्वअर्जित थी और ये आवश्यकता पड़ने पर राज्य को सैनिक सहायता भी देते थे[4] राज्य से पेटिया (खादय सामग्री), घोड़े का दाना प्राप्त करते थे। भौमिया राज्य के नियमों में बंधे थे। जवास, जुड़ा पहाड़ा, ऊमरिया, छाणी, थाणा, नेनवाड़ा, सरवण, पाटिया[5] और भी अन्य भौमियों की भूमि थी।

मेवाड़ में सामंतों का प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी एवं तृतीय श्रेणी में वर्गीकरण भी किया गया था जो कि महाराणा अमरसिंह प्रथम ने किया था। कर्नल टॉड एवं गोपीनाथ शर्मा[6] ने भी पुष्टि की है। यद्यपि श्यामलदास एवं ओझा ने महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय श्रेणी निर्धारण होना बताया है। पुरोहित ने मेवाड़ राज्य के दरबारी प्रबंधकर्ता (मास्टर ऑफ सरेमनी) के परिवार के निजी संग्रह की एक बही[7] को आधार माना है जिसमें महाराणा जयसिंह (1680–1698 ई.) से महाराणा हम्मीरसिंह (1773–1778 ई.) के काल की बैठक सूचियों में जयसिंह एवं अमरसिंह (द्वितीय) कालीन सूचियों में समानता प्रतीत होने से निष्कर्ष दिया की महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के पहले जागीरदारों का श्रेणी निर्धारण हो चुका था जो संभवतः महाराणा अमरसिंह प्रथम (1597–1620 ई.) द्वारा किया गया।
अतः महाराणा अमरसिंह (प्रथम) ने श्रेणीयों का वर्गीकरण, महाराणा कर्ण ने जागीरों में परिवर्तन एवं महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने सरदारों की जागीरों का स्थायीकरण किया।

प्रथम श्रेणी सामंत (16 उमराव)

सादड़ी, बेदला, कोठारिया, सलूम्बर, घाणेराव, बिजोलिया, देवगढ़, बेगू, देलवाड़ा, आमेर, गोगूंदा, बाठरड़ा, भीडंर, कन्नौज तथा पारसोली थे।[8]
मेवाड़ में प्रथम श्रेणी के सामन्तों के विषय में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्व है–

त्रण झाला, त्रण पूरबिया, त्रण पूरबिया, चूण्डावत भड़चार।
दोय शक्ता, दो राठौड़, सारंगदेव न पंवार।

कालांतर में इनकी संख्याा में फेरबदल भी हुआ 21 फिर महाराणा भूपालसिंह के समय 25 तक पहुंच गयी थी। इस संदर्भ में दोहा प्रचलित हुआ–

दोय राजा, त्रिण राजवी, चूंडावत फैर चार।
जमादार सुलतान है, डोडिया गढ़ सरदार।।

महाराणा अरिसिंह (द्वितीय) ने महुवाड़ा के सिन्धी जमादार अब्दुल रहीम बेग (17वाँ उमराव) को 1770 ई0 में एक पद दिया जिसने 1770 ई. में माधवराव सिंधिया और महाराणा अरिसिंह के मध्य लड़े गये युद्ध में सिंध से बुलाये गये मुसलमानों को अपनी फौजी टुकड़ी से बिना वेतन मेवाड़ को सैनिक सहायता दी व महाराणा ने इसे महुवाड़ा की जागीर, शहर में भारतसिंह हवेली और अन्य विशेषाधिकार प्रतिष्ठिाएँ भी दी थीं।
प्रथम श्रेणी सामंत उमराव, सोला नाम से भी जाने जाते थे राज्य में इनकी प्रतिष्ठा वंश मर्यादा के अनुसार थी, राणा का मंत्री पद व वंश परम्परागत राणा के सलाहकार, विशेषाधिकार प्राप्त थे इन सामंतो को 50,000 से 1 लाख रू. तक या अधिक की वार्षिक आय वाली जागीरें दी गई थी।[9]

द्वितीय श्रेणी सामंत अर्थात् बत्तीस

ये सामंत संख्या में बत्तीस होने से 'बत्तीस' कहा जाने लगा। ये साधारणतः 'सरदार' कहलाते थे। इनकी संख्या घटती बढ़ती थी इन्हें 5000 से 50,000 :- तक की वार्षिक आय वाली जागीर प्राप्त होती थी।
1930 ई. में द्वितीय श्रेणी के सरदारों में हमीरगढ़, चावंड, भदेसर, बोहेड़ा, भूणावास, पीपलिया, बेमाली, ताणा, रामपुरा खेराबाद, महुवा, लूणदा, थाणा, जरखाणा (धनेरिया), केलवा, बड़ी, रूपाहेली, भगवानपुरा, बाबा किशनसिंह, नेतावल, पीलादर, निम्बाहेड़ा, बंबोरी, बाठेरड़ा, सनरवाड़, करेड़ा, अमरगढ़, लुसाणी, भोपालनगर, संग्रामगढ़, धरियावाद, फलिचड़ा, विजयपुर थे।[10]

तृतीय श्रेणी अथवा गोल के सरदार

तृतीय श्रेणी सरदारों की संख्या निश्चित नहीं थी ये सैंकड़ों के लगभग थे। इन्हें 5000 :- वार्षिक आय की जागीर मिलती थी (कभी–कभी इस आय से अधिक की जागीर मिल जाती थी) साधारणतया इनके अधिकार में अलग–अलग गाँव या थोड़ी सी भूमि होती थी।महाराणा के किसी भी विरोधी संगठन का सामना करना इन्हीं के कर्त्तव्य में था अतः ये महाराणा की शक्ति के आधार स्तम्भ तथा राजशासन संचालन और दृढ़ करने में प्रधान सहायक स्वरूप थे। चूँकि महाराणा की अधीनता में कार्य करते और हमेशा महाराणा के पास हाजिरी देते थे तथा महाराणा को घेरे रहकर रक्षा का कार्य करते थे अतः 'गोल' के नाम से भी जाने जाते थे।
1930 ई. में मेवाड़ राजदरबार में तृतीय श्रेणी सरदार कई थे जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं– वरसल्यावास, केरिया, बंबोरा, थावंला, रूपनगर, आमलदा, कांकरवा, लाछूड़ा, मंगरोप, मोती, गुरला, पीपली, गलवा, सूरावास, टोंक आदि।[11]

चौथी श्रेणी के सामंत कहे जाने वाले 'बाबा' ये राणा के परिवार में उत्पन्न राजकुमार गण थे जिनके भरण–पोषण के लिए राज्य की तरफ से भूमि निश्चित होती थी। 'बाबा' अर्थात् बालक के युवा होने पर तलवार बंदी की रस्म अदा कर सरदारों की श्रेणी दी जाती थी। इसी प्रकार 'गिरसिया ठाकुर' भी होते थे। एवं किसी सामंत द्वारा युद्ध में उत्कृष्ट पराक्रम दिखा वीरगति को प्राप्त हो जाने पर उसके परिवार को भरण–पोषण के लिए कर मुक्त भूमि दी जाती थी जो 'सिरकटी' अथवा 'मुण्डकटी' की जागीर कहलाती थी।[12] राज्य के अन्य कर्मचारी भी वेतन की अपेक्षा जागीर प्राप्त करना प्रतिष्ठित समझते थे, शिल्पकार, चित्रकार, वैध, चारण धायभाई जागीर प्राप्त करते थे। राज्य के पद "मौरूसी"[13] माने जाते थे 'पद उपाधि' उस पद पर नियुक्त व्यक्ति के वंश से जुड़ जाती थी।

जागीरदार नियमानुसार अपने कर्तव्यों का पालन व विशेषाधिकारों का उपभोग करते थे और अपनी सैन्य सेवा से राज्य को सुरक्षा, सहयोग प्रदान करते थे एवं जागीर से प्राप्त आय से राज्य को नियत कर देते तथा स्वयं महाराणा की चाकरी सेवा करते थे।

जागीरों में प्रचलित लाग–बाग/विभिन्न कर

जागीरदारों द्वारा अपने जागीरी गाँवों से भिन्न–भिन्न प्रकार की लाग–बाग[14] की वसूली की जाती थी। जिसमें से निश्चित रकम राज्य के खजाने में जमा कर शेष जागीरदार स्वयं के व्यय हेतु उपयोग में लेते थे। जागीरों में लागें अधिकांशतः समान और भिन्न–भिन्न भी हुआ करती थी। जो कि मेवाड़ में इस प्रकार थी –

रसाल लाग – ठाकुर, किसानों से साग–भाजी, जुवार का फेंकडा, होला या नीलवा, मिर्च रस को घड़ो (गन्ने का रस) मक्की का पूला, गोउ–जौ की डांग्या, ककड़ी, गुड़–प्याज आदि नामों से जो वस्तुओं के रूप में लागतें वसूल करता था। वो रसाल लागते[15] एवं उगाई के रूप में हरी साग की वसूली 'छेलरा [16] कहलाती थी।

कुंता और लाटा – कुल उपजित अनाज की ढेरियों में से तय शुदा हिस्सा लगान के लिए वसूला जाना 'लाटा' कहलाता था और फसल पकने के समय कुंता करने वाले कामदारों का दल गाँव में जाकर स्थानीय पंचों, मुखियाओं के साथ प्रत्येक खेत में फसल की अनुमानित उपज तय कर नियमानुसार 1/4 या 1/3 हिस्सा लगान के रूप में निश्चित कर कोढ़यार में जमा करने के निर्देश देते [17] यह प्रक्रिया 'कुंता' के नाम से जानी जाती थी। एक रूपया कुंता प्रति आसामी 'कुंता' का नजराना' या 'सुकन भेंट' डोरी पूजन, कुंता के समय निगरानी रखने वाले गमती, शहना, चरवादार, हेतु लगान लिया जाता था।

हासिल – गाँव में फसल कटने पर गांव का पंच हासिल के रूप किसानों से अनाज एकत्र कर ठिकाने के कोढ़यार में रखवा देता था।

ईंच – देवगढ़ ठिकानो में सब्जी बेचने वाली मालणियों से जो कर वसूला जाता था, उसे ईंच कहते थे। इस ठिकानों की ईंच, रावत किशन जी ने अपनी बड़ी रानी को लाग में दी थी। अतः रोज रानी की दासियाँ बाजार से मालणियों से ईंच की वसूली करतीं थी।

भोग – भूमिकर जो पैदावार का उपज का 'भाग' लिया जाता था 'भोग' कहलाता था यह उपज का 1/6 छटुंड, 1/5 पुँछी, 1/4 रस्म चौथान की कहा जाता था तथा जो नकद रकम के रूप में लिया जाता था उसे हासिल कहते थे। 'भोग' लाटा अथवा कुंता के बाद ही लिया जाता था।

बराड़– यह कर के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला व्यापक शब्द था। जो कई नामों और कई रूपों में प्रचलित था। यह जिस वस्तु पर लगाया जाता उसके साथ इस शब्द को जोड़ दिया जाता था।[18] गनीम का बराड़–युद्ध विषयक बराड़ भोम बराड़, कोथल बराड़ [19] नूत बरार [20] आदि उगाई की लागन नकद प्राप्त होती उसे बराड़ कहा जाता। बराड़ कर वर्षा, सर्दी, गर्मी के मौसमानुसार लिया जाता था जहाँ बराड़ नहीं लिया जाता वहां उपज का 1/2 हिस्सा व युद्ध के समय तीसरे हिस्से के रूप में लिया जाता था। वही कुंता के समय की लागत 'उगाई कुंता'। कुंत बराड़ व उगाई की रकम 'टक्की' कहलाती थी। सेरूणा, गंदमजरा, कुंवर मटकी अगोतरी आदि भी कर थे। हल के साथ उगाई के रूप में प्राप्त रोकड़ लागत 'बराड़ सामद', माल पर उगाई के रूप में ब्याज–सहित वसूल की गई लागत 'उगाई माल टक्की' कही जाती थी इसी प्रकार रोकड़ उगाई की शक्ल में लागत 'बराड़ मागंण' या 'मांगण' कही जाती थी। उगाई के रूप में प्रति हल रोकड़ लागत 'हल–बराड़', 'हलवा' या 'हलसरी', प्रतिमाल लागत माल के रूप में 'हलमाल', माल की शक्ल में रोकड़ लागत को ब्याज एवं बीड़ या बरणोट पर रोकड़ लागत 'माल ब्याज' कहलाती थी। इसी प्रकार 'बरसोद', मलनी की लागत मेर की जमीन 'हलजुड़ा की रोकड़ लागत' जुड़ा की लागत या 'माल जुड़ा' की लागत' नाम से जानी जाती थी इसी को आड़ा जूड़ा भी कहते थे। बराड़ जागीर, फौज बराड़, पाड़नाथ, गढ़ बराढ़, डाड बराड़ (विवाह अथवा मृत्यु के समय) बराड़ छटाई यद्यपि माफी के गांवों से भूमि कर नहीं लिया जाता था तथापि अन्य लागते जैसे 'पाउ' जो कि चौथी पांती, तीजी पांती और आधी पांती के रूप में प्रचलित थी, ली जाती थी। इसी प्रकार जो सेरिया नामक, गांव जो कि ब्राह्मणों को माफी में दिया गया था इसमें बसने वाले महाजनों से 50 :- 'घर झुंपी बराड़' कर/मकान कर ठिकाने में जमा किया जाता था। गोगून्दा की ख्यात के अनुसार–महाजनों से तीनों मौसम में झूँपी बराड़ की राशि वसूली जाती थी जबकि गोमचा महाजनों से मापा कर नहीं लिया जाता था।[21]

भोग के साथ 'गज बदोतरी', 'नमण', 'भोग को भांडो', 'घघूरी' इत्यादि लागतें तथा अधिनस्थ जागीरदारों से कंवर गोठ, बाई बराड़, गंगागोर, इन्द्रपूजा इत्यादि बराड़ नगद रूप में लिया जाने वाला कर था। गन्ना, साग–तरकारी, सण आदि की उपज पर लिया जाने वाला कर नगद रूप में दिया जाता था जो 'ढेका' कहलाता था। आधा, नगद आधा अनाज के रूप में दिया जाने वाला कर 'हिरण्य' नाम से जाना जाता था [22] खेत में सण, अम्बाड़ी की बुवाई पर किसान से अम्बाड़ी का जुडया या वाक्, सण की पूल्यां सा साण की गुछलियाँ, सण या अम्बाड़ी की रस्सियों के रूप में ली गई लागतें 'रासड़ी', 'दुवासणा' या 'पछाड़ी', रस्सियों के स्थान पर 2 आना प्रति रास, 2 सेर सण पर एक रास, मीणों से प्रति घर कुंडले की लागत के नाम से मांचे (खाट) की बाण का कुंडला या कुंडले के अभाव में तीन आना वसूला जाता था।

जागीरदार प्रजा से नजराने के रूप में भी रकमें प्राप्त करता था। जो कालान्तर में लागतों के रूप में बन गयीं। जैसे गद्दी बैठने पर नजराना जो 'नजराणा' गादी उछब' कंवर जी का नजराना, कंवर गोठ 'गांव गोठ', तीज की गोठ, कामदार, पटेल, ठाकुर जी का नजराणा, 'राखी का' बापी खड़म का, डोली का, जागीदार के गांव दौरे, तहसील के तबादले, हाकिम की पल्टी पर नजराने वसूले जाते थे। जमीन के बाजी पट्टे का नजराना 'जमीन बिकाव', 'डोरी का नजराना', त्यौहारों के नाम से तिवारी, हीड़, दीवाली की 'नूंछ', नूंद नजराना के रूप में 'पानी सरा' लागत लगती थी। इसी प्रकार 'बींद की पगे लागणी', 'ब्याव चंवरी'[23] 'नाता कांगली या 'फारगती', कांसा [24]जुहारी का नारियल[25] मातृ पूजनार्थ दूध 'जावा का दूध', भैंस का दूध–दूध–भैंसा, दूध दगली, जावा का धीरत अथवा चौमासा का धीरत चाँदी का धीरत (घोड़ो के लिए) '–जावा का घी'[26] 'फोगट का घी/'नीकाला घी'/'बिघर बांटे का घी'/जामणा का घी' शब्द प्रचलित थे।

जागीरदारों के भृत्यों एवं अतिथियों का खर्च चलाने के लिए 'पावण–पावरा', जागीरदारों के घोड़ों के आगे चलने वाले लोगों के लिए लागत के रूप में अनाज 'अगवा की लागत' नाम से वसूला जाता था। कमीण कंरूओं हेतु दालों, दमामी, नक्कारची, भांड जिन्हें 'बाकला' लागते कहते थे। 'बनोला', 'टीका', खोल, वैवाहिक अवसर पर व किसी भी मृत्यु पर ग्राम दृष्ट (प्रत्येक गांव पर सामुहिक रूप से) 'पाग बंधाई' या 'पाग का नजराणा', रावले में रोशनी हेतु ड्योढ़ी पर पहरे का खर्च के लिए लागते ली जाती थी।

घोड़ो का नाड़ो – ठिकाने की घुड़साल में घोड़े को बाँधने के लिए प्रत्येक गांव से छः सिंदेर प्राप्त किये जाते थे यह लाग 'घोड़ो को नाड़ो' नाम से जानी जाती थी। चातुर्मास में घोड़ों का चराई पर भेजे पाने पर उनकी चराई के लिए गांवों से घास प्राप्त किया जाता था जिसको बिस्वा को धान कहा जाता था। इसी प्रकार जागीरदार द्वारा स्वयं एवं घोड़े के लिए भी, गेहूँ, जौ, चरण रजका के पूले, घोड़े के लिए प्राप्त हरे अनाज का भारा 'हरया को क्यारो', जौं को क्यारो, गोहूं को क्यारो, चरणा को भारो, नाम से जाना जाता था। उगाई लागत के रूप में हरे घास अनाज का भारा जो ओसरे से वसूल किया जाता था 'ओसरे का भारा' या 'फेर का भारा' कहलाता था। इसी प्रकार जानवरों की चराई पर भी विभिन्न प्रकार के कर लिए जाते थे।

जैसे– 'छापर की लागत', साखो, पूँछड़ी, नीता पिया का टक्का [27] जाति वार पशुओं (गाय, बैल, भैंस, बकरी) पर पूँछड़ा दीढ़–प्रति पूँछ कर। 'चराई कर, बबूल की पापड़िया चराने की लागत 'छालियों की चराई', इस प्रकार के अनेक तरह के चराई कर गाडर बैठक नामक कर गडरियों से ठिकाने के खेतों में लागत स्वरूप गाडर बैठायी जाती थी जैसे करेड़ा ठिकाने में खाद की पूर्ति करने के लिए ठाकुर के खेत में 14 दिन तक गडरियें से उनकी भेड़, बकरियाँ बैठाई जाती थी।[28] इस प्रकार जागीर में अन्य जाति के कार्य करने वाले लोगों से उनके कर्म के अनुरूप कर की व्यवस्था थी जैसे लोहारों से एरण–पट्टा, कुरछी, दांतली की लागत, खाती से खतोड़, सुधारों से पाट्या चमारों से पगरखियाँ, चमार व बलाई से तंग तोबरा, खाल रंगने वाले रेगरों से आड़ाखाल, मुर्दा मवेशी उठछाने वालो से '–घिसम पट्टा', वस्त्र व्यापार पर 'बरखड़' या 'पछेवड़ा', रेजे की लागत, कलालो से कलाली–पट्टा, बारूद बनाने वालो से 'सोर–बारूद' तथा कन्दोई तेलियों से घाणी–खूट और 'ऐन का तेल [29] ऊन खरीदने वालो से 'मापा–ऊन' नामक लागत वसूली जाती थी। ब्राह्मणों की 'पूँछी की लागत', भीलों को चाकरी के बदले माफी भूमि पर 'बैठमी जमीन' नाम से लागत देनी पड़ती थी। नया कुआ खुदवाकर जमीन पीवल करने पर नाल पट्टा के नाम से 6 :- सालाना कर लगता था। भील, राजपूत आदि से पथ की निगरानी के नाम पर चौकी बोलावी' लागत लगती थी। मवेशी द्वारा खेत में नुकसान करने पर 'उजाड़' नाम से दण्ड वसूल किया जाता था। घर में नया दरवाजा बनाने पर 'बारणों पड़ाई' नामक लागत थी।

खड़लाखड़ – वर्ष में एक बार लकड़ी व चारे के लिए यह कर लिया जाता था।[30] जो ठिकाने दार इस कर से मुक्त थे उनके पट्टों में छूट का उल्लेख होता था। यह कर न देने पर राज्य की ओर से ठिकाने की ओर से रोजाना 1 :पया लिये जाने का प्रावधान था। खाखपुरी जी की लागत, राजगुरू की लागत, चार–भुजाजी की पोशाक, की लागत आदि मंदिरों की लागत को 'पावणा' की लागत भी कहते थे। यह प्रतिमन उपज पर 1 सेर प्राप्त की जाती थी।

देवस्थान विभाग की एक बराड़ लखणों या भेंट लखणों नाम से प्रचलित थी कुछ विशेष लागतें जो किन्हीं–किन्हीं स्थानों पर प्रचलित थी जैसे 'सरबरा बराड़' के रूप में 'नारमगरा' उदयपुर में, कुभंलगढ़ महाराज (किले की निगराणी की बराड़), एकलिंग जी का घीरत, हनुमान घाट, उदयपुर का बराड़, बावलास की लागत (आयसजो बावलास के नाम पर

आदि। दशहरे पर बलिदान हेतु एक बकरा लागत स्वरूप इसी प्रकारदेवताओं के लिए पाड़ा–खाजरू गाँवाई लिया जाता था एवं जागीरदार का खाजरू गाडर–टोले में से लिया जाता था। गाडरियों से 'कामला की ऊन' तथा कम्बल बनाने वालो से 'कामला' या इसकी कीमत ली जाती थी।

जनगणना के अवसर पर 'मुर्दुम शुमारी' के नाम से कुछ रकम वसूली जाती थी। कच्ची तहसीलों में ही शाहना–बलाई की लागत, शहना फरास की लागत, पटवारी, पटेल, गमेती, गरड़ा, रसोईदार अनेक लोगों संबंधी लागते लगती थी।

दाणकर – आयात निर्यात कर का समन्वित नाम दाण था व 'दाण' कर लेने वाला राजकर्मचारी 'दाणी' कहलाता था।

एक गांव से दूसरे गांव में माल ले जाने पर 'माया', बारूंता और एक रियासत से दूसरी रियासत में माल लाने ले जाने पर 'डाण'/'दाण' कर लगता था। इसी प्रकार व्यापार पर ली जाने वाली कुछ रकम 'मापा आड़ते, पथिकों से पाड़े' की पोठी पर लिया जाने वाला कर टैकी पाड़ा कहलाता था और गमेछा या खुमठाण भी व्यापारिक कर ही थे।[31] किराने की एक गाड़ी पर 1 :पयो, एक धान अनाज की गाड़ी पर 2 आना, गुड़ की एक गाड़ी पर 'पावती' (चार आना) कर था। महाराणा भीमसिंह भींडर ठिकाने के जोरावरसिंह ठिकानेदार को व्यापारियों की रक्षा करने व दाण कर 1/2 लेने के निर्देश दिए। किसी कारण वश यदि ठिकानेदार व्यापारियों की सुरक्षा का भार अपने ऊपर नही लेता तो राज्य की ओर से कर्मचारी 'दाण' कर की वसूली करते थे।

षट्दाण कर – यह महाजनों से वसूला जाने वाला कर था। जो यद्यपि राज्य की ओर से वसूला जाता था तथापि महाराणा, जागीरदार को भी षट्दाण कर वसूलने का आदेश दे सकता था। मेवाड़ के भींडर ठिकाने दारों को महाजनों से षट्दाण कर लेने का अधिकार था।[32] दीप–मालका' महाजनों से ली जाने वाली लागत थी। अन्य सामान्य लागते विभिन्न त्यौहारों जैसे होली, दिवाली, डोली की लागत, गारा–गोबर (बेगार के रूप में दड़ाई–लिपाई), नायको की चाकरी (बेगार), बैढ पोठी (बेगार), सरबरा (बेगार), बीड़ा वेट (बेगार), कासीद–बराड़ (डाक खर्च के लिए), छावणी (फौज खर्च) के नाम पर कहीं–कहीं बेगार के स्थान पर रकम, जावणी (दही, दूध की निर्मूल्य, जावणी प्राप्त करना) लागत आदमी खड़ लाखड़ वसूल करने के लिए जाने वाले आदमी का खर्चा, केलू की लागत (कुम्हार से मुक्त केलू) सराई, लावारिश मवेशियों का खाद पड़त भूमि में लिया जाता था, उसे 'रोड़ी' कहते थे। इस प्रकार की अनेकों तरह की लागते जागीरदारों द्वारा जनता पर थौपी गयीं थी और वसूली करने वाले कर्मचारियों से प्रजा त्रस्त थी। कभी कोअई लागते समाप्त भी कर दी जाती पर जागीरदार फिर भी वसूल करते रहते थे।[33] जागीरदार राज्य को तो तय शुदा कर व नजराने आदि देते थे लेकिन इस हेतु आय का साधन उनके जागीरी क्षेत्र के गांव ही थे जिनसे विभिन्न लागते वसूली जाती थी। मेवाड़ के ठिकानों में ये लागते महाराणा भूपालसिंह के राज्यकाल में सन् 1934–35 तक चलती रही थी।।

----------00--------

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) सोमानी – 'हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, **रामबल्लभ शांतिदेवी मातेश्वरी पब्लिकेशंस गंगापुर भीलवाड़ा राज.1976ई.** पृ. 1

2) ओझा **राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद**– उदयपुर राज्य का इतिहास,1, **राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर (राज.)सं. 1928ई,** पृ.1,

राजपुताना गजेटियर वा IInd दी मेवाड़ रेसीडेन्सी, **इरस्किन के.डी. पब्लिश्ड बाय विपिन जैन फॉर विंटेज बुक** 557, **गुड़गांव (हरियाणा)फर्स्ट पब्लिकेशन** 1908, पृ.1

टिप–महाराणा उदयसिंह द्वारा 1553 ई. में उदयपुर को राजधानी बनाने के बाद मेवाड़ को 'उदयपुर' नाम से जाना जाने लगा।

3) भटनागर – मेवाड़ का राज्य प्रबंध एवं महाराणा कालीन दो बहियाँ पृ. 70, हु. भाटी मेवाड़ जागीरदारा री विगत, पृ. 1

4) टॉड राजस्थान में सामंत वाद, **सं. पालीवाल डॉ. देवीलाल, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर (राज.)** 1989ई.पृ. 80–81

5) पुरोहित राजेन्द्र – मेवाड़ दरीखाने के रीति रिवाज एवं संस्कार, पृ. 82

6) पूर्वोक्त पृ. 45, शर्मा धर्मपाल – मेवाड़ संस्कृति एवं परंपरा, पृ. 116

7) पुरोहित – मेवाड़ दरीखाने, पृ. 45

8) महाराणा जयसिंह (1680–1698 ई.) के काल में 16 उमराव

9) ओझा – मेवाड़ का इतिहास, पृ. 257, टॉक – सामंतवाद, पृ.20

10) पुरोहित **डॉ.राजेंद्रनाथ**– मेवाड़ दरीखाने, **राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर (राज.)सं.** 2005 पृ. 47

11) पुरोहित –मेवाड दरीखाने, पृ. 47–49

पृ.128

13) मौरूसी – वंशानुगत – पैत्रक

14) शोध पत्रिका, वर्ष 20 अंक 2, अप्रेल जून 1969 ई. पृ. 73, शर्मा – मेवाड़ संस्कृति, पृ. 115 टिप–मेवाड़ में बेगार प्रथा भी प्रचलित होने से संभवतः '–विष्टि' फिर नये शब्द बैठ–बेगार का प्रयोग किया जाने लगा।

15) भाटी **डॉ.विक्रमसिंह,** मध्यकालीन राजस्थान में ठिकाना व्यवस्था, **राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर (राज.)प्रथम संस्करण** 2004 पृ. 164

16) छेलरा – प्रचलित भाषा का शब्द

17) चुण्डावत रानी लक्ष्मी कुमारी – रजवाड़ों के रीति रिवाज, **राजस्थानी ग्रंथागार सोजती गेट जोधपुर (राज.)प्रथम संस्करण** 2006 पृ. 47

18) शर्मा, टॉड–रा. का इति, पृ. 72

19) कोथल बराड़ – व्यापारिक कर

20) नूत बराड़ – वैवाहिक अवसर पर लिया जाने वाला कर

21) भाटी **डॉ.हुकमसिंह**– गोगून्दा री ख्यात, **प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल संस्थान उदयपुर, प्रथम संस्करण** 1997 पृ. 9

22) शोध पत्रिका – वर्ष 20 अंक 2 अप्रेल–जून 1969 ई. पृ. 72

23) विवाह कर।

24) कांसा – शादी या गमी पर कर।

25) त्यौहार व विवाह अवसर पर ली जाने वाली लगान।

26) चौमासे में दूध देने वाली गाये, भैंसो के एक दिन का दूध लेकर घी हेतु वसूल की जाने वाली लागत थी।

27) वर्षा ऋतु में मवेशियों को हरे घास की चराई की लागत

28) भाटी **डॉ.हुकुमसिंह, मेवाड़ जागीरदार रे गांव पट्टा राहमरजाद, री** हकीकत, **प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल संस्थान उदयपुर,(राज)** पृ. 158

29) भाटी **हु** – गोगून्दा री ख्यात, पृ. 93

30) शर्मा – टॉड – रा. का इतिहास. पृ. 73

31) ओझा **जे.के.,** मेवाड़ का इतिहास, **एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली,सं.** 1980 पृ. 270

32) भाटी **वि**– ठिकाना व्यवस्था, पृ. 169

33) शोध पत्रिका, वर्ष 20 अंक 2 वर्ष 1969 पृ. 74

----------00--------